IOSR Journal Of Humanities And Social Science (IOSR-JHSS)
Volume 24, Issue 2, Ser. 9 (Feb. 2019) 79-81
e-ISSN: 2279-0837, p-ISSN: 2279-0845.
www.iosrjournals.org

ललित कला में षडंग दर्शन की उत्पत्ति एवं सौंदर्यशास्त्र में इसकी उपादेयता

डॉ. मनीषा चौबीषा
राजकीय मीरा कन्या महाद्यिालय, उदयपुर

सारांष :– *प्राचीन काल से आधुनिक काल तक ललित कला में निरन्तर परिवर्तन हुए हैं। तकनीक एवं अनुसंधान की दृष्टि से कला सृजन के नवीन आयाम स्थापित हुए है परन्तु कला सृजन के मूल आधार उसके मुख्य तत्व आज भी वहीं माने जाते है जो प्राचीन काल से चले आ रहें हैं। कला सृजन के तत्वों के साथ–साथ कला का उद्देश्य उसकी उपादेयता में भी कोई विशेष परिवर्तन नही हुआ हैं। फलस्वरूप वर्तमान युग में भी कला का कार्य मनोविनोद, उल्लास, आत्मतृप्ति, एवं सौंदर्य से ही जुडा हुआ हैं।*

आदिम मानव ने गुफा चित्रों के माध्यम से अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त किया। अपनी जीत को नृत्य संगीत के माध्यम से तथा दैनिक जीवन की आवश्यकताओं को विभिन्न कला माध्यमों से अभिव्यक्त किया। इसी अभिव्यंजना को निश्चित कला तत्वों का अनुसरण करते हुए सौंदर्यात्मक कला सृजन को मूल उद्देश्य बना लिया।

वर्तमान समय नवीन तकनीकों नवीन विचारों एवं नये प्रयोगवाद से निरन्तर प्रगतिशील हैं। इसी परिवर्तन ने मनुष्य को नित नयी खोज, तकनीकी एवं उपयोगिता के आधार पर सृजन की ओर अग्रसर किया हैं। वर्तमान युग की कलाधारा में पूरे समाज की चेतना प्रतिबिम्बित हैं। परिणामस्वरूप यह समय वैज्ञानिक अविष्कारों, तकनीकी विकास एवं आधुनिकता से ओत–प्रोत हैं। परन्तु इसका प्रस्फूटन प्राचीन कला के पदचिन्हों में देखा जा सकता हैं। इसके प्रमाण तात्विक ज्ञान, दर्शन, शास्त्रीय अवधारणा, पौराणिक कथाएं, धर्मशास्त्र, ग्रन्थों, पुराणों, प्राचीन हवेलियों, चित्रों, वास्तुशास्त्र एवं सामाजिक परम्पराओं के अध्ययन से प्राप्त होता हैं। यहाँ प्राचीन से आधुनिक तक ललित कला की भावाभिव्यंजना, लावण्य, सौंदर्य तथा कला तत्वों का आपसी सामंजस्य ही अध्ययन का केन्द्र हैं।

समस्त ललित कलाओं का तात्विक सम्बन्ध बडा मजबूत हैं। चित्रकला, मूर्तिकला, संगीत, काव्य, वास्तु में आपस में कई सूक्ष्म व स्थूल जुडाव हैं जिसकी वजह से सृजन में सौंदर्य का आर्विभाव हुआ।

कलाकृति में सौंदर्य प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से विधमान रहता है जो चित्र को आत्मतृप्ति की ओर ले जाता हैं। कला के तत्वों का आपस में संयोजित होकर आकर्षण उत्पन्न करना तथा उस रस में आत्मतृप्ति प्राप्त होना ही इस विषय का उद्धेश्य हैं। यह आत्मतृप्ति निश्चित कलागत तत्वों एवं सिद्धान्तों के संयोजन से प्राप्त होती है अतः कला का कला तत्वों से सिद्धान्त जुडाव एवं उससे सौंदर्य की अनुभूति ही कला का उद्धेश्य एवं उससे परमात्मा की अनुभूति ही। इस विषय की प्रासंगिकता भी हैं। सौंदर्यशास्त्र सभी कलात्मक रूचियों को प्रभावित करता हैं और उसे उपयोगी बनाता हैं।

<u>ललितकला एवं षडंग</u> :– पाश्चात्य साहित्यशास्त्र में सौंदर्यशास्त्र को आर्टस या आर्ट कहा गया। यह शब्द लैटिन भाषा में व्युत्पत हुआ जिसका शाब्दिक अर्थ कौशल से हैं। पाश्चात्य विचारक हीगेल ने कला शब्द को उपयोगी कला एवं ललित कला में विभक्त किया। ललित कलाओं से तात्पर्य वे कलाएं जो सुन्दर हो, जिसे देखने सुनने से आनन्द की प्राप्ति होती है तथा हृदय एवं इन्द्रीयों को शान्ति सकून मिलता हो, जबकि उपयोगी कला जीवन में उपयोग हेतु अथवा जीवनयापन के लिए अपनायी जाती हैं। ललित कला मनोविनोद, मनोविज्ञान एवं अभिव्यक्ति को प्रकट करती हैं। इस हैंतु कला के सृजन में कुछ तत्वों की आवश्यकता रहती है एवं उनका समावेश या संयोजन नूतन सृजन करता हैं। इन प्रमुख तत्वों में शब्द, स्वर, रेखा, रंग, आकार, लय, अलंकार तथा भावों को सम्मलित किया गया हैं। कलाकृति हेतु यह सभी तत्व माध्यम के रूप में अपनाये जाते हैं। इनकी उपस्थिति कला सृजन में किसी न किसी रूप में प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष, मूर्त–अमूर्त, अथवा आंशिक या सांकेतिक रूप से विद्यमान रहती हैं।

उपर्युक्त तत्वों से मिलकर सृजित कला किसी न किसी रूप, भाव कि अभिव्यक्ति करती हैं। नूतन चेतना, नये आयाम एवं जीवन दर्शन में आत्मिक आनन्द का संचार करना ही इसका मूल उद्देश्य हैं। पाश्चात्य विचारक कला को अलग–अलग प्रकार से परिभाषित करते हैं। प्लेटो ने कला को सत्य की अनुकृति माना तो अरस्तु ने अनुकरणीय कहा। क्रोंचे ने अभिव्यक्ति कहा तो फ्रॉयड ने मनोवैज्ञानिक कल्पना माना। भारतीय विचारक कला को भाव, रस, एवं कल्पना की अभिव्यक्ति तथा आंतरिक अभिव्यंजना मानते हैं।

इस प्रकार कला के तीन अर्थ निश्चित हुए–

- कला एक क्रिया हैं जो सहज एवं संयमित हैं।
- ललित कलाओं एवं उपयोगी कलाओं में सौंदर्य की अभिव्यक्ति अलग–अलग उद्देश्य से होती है तथा कलाकृति का सौंदर्य उसके भावों एवं उपादेयता पर निर्भर करता हैं।
- सृजन की कल्पना, विचार एवं कलाकार का कौशल इसके महत्व एवं उपयोगिता को निर्धारित करते हैं।

भारत में ललित कलाओं की उत्पति एवं विकास क्रम को विभिन्न शास्त्रों, पुराणों एवं ग्रंथों में वर्णित किया गया हैं। षडंग दर्शन एवं चित्रण के लिए निम्न परम्पराओं का अनुसरण किया जाता हैं–

<u>षडंग दर्षन की भारतीय परम्परा</u> :– चित्र शास्त्र के रचियताओं ने चित्रकला सबंधी साहित्य को तीन भागों में बांटा – दार्शनिक, तात्विक एवं ऐतहासिक। दार्शनिक साहित्य कला के मूल्यों तथा उसकी उपलब्धियों का मूल्यांकन करता है तथा तात्विक साहित्य में कला के मूल तत्वों सिद्धांतो और नियमों की व्याख्या की गई हैं। जबकि ऐतहासिक साहित्य में कला का काल क्रम, कला शैलियॉ तथा सांस्कृतिक परम्परा का अध्ययन किया जाता हैं।

चित्रकला के प्रमुख प्राचीन ग्रंथों में कामसूत्र, चित्रसूत्र एवं चित्रलक्षण का विशेष महत्व हैं। इन तीनों ही ग्रंथों में चित्रकला के मूल तत्वों की उत्पत्ति एवं महत्व के विषय में उपयोगी जानकारी प्राप्त होती हैं।

- **कामसूत्र** – जीवन के चार पुरूषार्थ– धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के महत्व को कामसूत्र में वर्णित किया गया है जिनमें वात्स्यायन द्वारा रचित कामसूत्र अति प्राचीन एवं विशेष उल्लेखनीय हैं। इस कामसूत्र में 64 प्रकार की कलाओं का उल्लेख हैं जिसमें आलेख्य को भी सम्मलित किया गया हैं। इसी कामसूत्र की टीका यशोधर नामक पंडित ने
  ''जयमंगला''नाम से लिखी जिसमें 64 कलाओं के साथ आलेख्य की भी चर्चा की गई हैं

इसके अनुसार
आलेख्यम् चित्रमिति। रूपभेदाः प्रमाणानीभावलावन्ययोजनम्
सादृश्य वर्णिका भंग इति चित्रषडंगकम्।।
अर्थात् रूपभेद, प्रमाण, भाव, लावण्य योजना, सादृश्य एवं वर्णिका भंग, चित्र षडंग के छः तत्व हैं। इसी षडंग को 20 वीं शती में अवनीनन्द्रनाथ ठाकुर ने विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की और चित्रकला में निहित 6 प्रमुख तत्वों को स्पष्ट किया। उन्हीं के अध्ययन से चीनी साहित्य में भी शीहो द्वारा रचित षडंग की भी जानकारी भी दी गई जिसमें उन्होने इसे 479 ई. से 501 ई. के मध्य लिपिबद्ध होना माना। अवनीन्द्रनाथ द्वारा दिये गये षडंग कि व्याख्या में रूपभेद, प्रमाण, भाव, लावन्य योजना, सादृश्य एवं वर्णिका भंग इन छः तत्वों का उल्लेख विस्तार से किया गया। भारतीय कला में इन्हीं छः तत्वों को आधार मानकर उनका अध्ययन किया जाता हैं।

- **चित्रसूत्र** – विष्णु पुराण के एक उप पुराण विष्णु धर्मोतर पुराण को चौथी पांचवी शती में रचा गया। इसके तृतीय खण्ड में संगीत, नृत्य, मूर्ति एवं चित्रकला के नियमों का उल्लेख किया गया हैं। इसी में चित्रकला का विशेष विवेचन अध्याय 35 से 43 तक हुआ है इसे चित्रसूत्र कहा जाता हैं। चित्रसूत्र में वर्णित चित्रकला के नियमों का पालन अजन्ता के चित्रों में भी पाया जाता है, अतः शास्त्रीय दृष्टि से इसका विशेष महत्व हैं। यहाँ स्त्री एवं पुरूष के शरीर के प्रत्येक भाग का नाप एवं लम्बाई चौडाई का उल्लेख किया गया हैं। कद, आयु के अनुसार शरीर का आकार प्रकार एवं विभाजन किया गया हैं। साथ ही चित्र के प्रकार, उनके गुण, तकनीक एवं रेखाओं रंगो की भी विस्तृत व्याख्या की गई हैं। इसी प्रकार दैत्य, दानव, देव, मानव आदि की कद काठी, जन्तु चित्रण, नव रस, चित्र के भाव, प्रमाण एवं लावण्य को भी स्पष्ठ रूप से समझाया गया हैं। साथ ही मुखमण्डल, एक चश्म, सवा चश्म चेहरे, उल्टा, सीधा, क्षय वृद्धि, परिप्रेक्ष्य आदि तत्वों को भी वर्णित किया गया हैं। इस प्रकार चित्रसूत्र में वस्तुओं के अन्तरंग गुण, बाह्य दोष आदि का भी उल्लेख हैं। यह ग्रंथ भारतीय चित्रकला के नियमों का सम्पूर्ण एवं उत्तम ग्रंथ है जिसके नियमों को आज भी कलाकृतियों में अपनाया जाता हैं।
- **चित्रलक्षण** – सोंलहवी शताब्दी में श्री कुमार नामक आचार्य ने 'शिल्प रत्न' नामक ग्रंथ की रचना की जिसके प्रथम भाग के 46 वे अध्याय का नाम ''चित्रलक्षण'' हैं। इसी अध्याय में चित्रण के विभिन्न प्रकार, चित्र परम्परा एवं चित्रण की तकनीक की विस्तृत व्याख्या की गई हैं। जो षडंग एवं सौंदर्यशास्त्र की शास्त्रीय परम्परा के अर्न्तगत माने जा सकते हैं। उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हैं कि चित्र रचना में तकनीकी का प्रयोग चित्र षडंग के अर्न्तगत हुआ हैं। इन ग्रंथो में जिन पद्धतियों का विवेचन है उन्हीं को ललित कला में प्रमुख तत्वों के रूप में अपनाया जाता हैं। सभी तत्व मिलकर कला को सौंदर्यमयी एवं आर्कषक बनाते हैं।
  सौंदर्यशास्त्र की भारतीय परम्परा में उपर्युक्त ग्रंथो के अतिरिक्त भरतमुनि के रस सिद्धांत का भी महत्वपूर्ण स्थान हैं। इस सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक कलाकृति के पीछे जो भाव छिपा होता है उसका प्रस्तुतिकरण ही उसे प्रभावशाली एवं विशेष बनाता हैं। कला की दृष्टि से रस अभिव्यंजनीय वस्तु है जिसके स्वाद से आत्मा की तृप्ति होती हैं। इन रसों में भरत मुनि ने आठ स्थायी भाव, आठ सात्विक भाव, तथा तैंतीस संचारी भावों का (कुल 49) उल्लेख किया हैं। यह सभी भाव मानसिक दशा, क्रियाकलापो एवं विभिन्न तकनीकी उपायों द्वारा दर्शक को अनुभूत होते हैं। नाट्यशास्त्र में रस के सम्बन्ध में कहा गया है कि – ''विभावानुभावव्यभिचारि संयोगाद्रंस निष्पतिः'' अर्थात् विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारी भाव के संयोग से रस निष्पति होती हैं। इस प्रकार भारतीय ललितकला में कला तत्वों को विशेष महत्व मिला। कला तत्वों का अनुसरण करके ही ललितकला में भाव अभिव्यक्ति एवं आनन्द की अनुभूति होती हैं। भारतीय साहित्य शास्त्रों में वर्णित सौंदर्य का चारूत्व, रमणीयता, शोभा, कान्ति, चमत्कार आदि से सम्बोधित किया जाता रहा हैं। कलाकृति में रूप आकार के माध्यम से सौंदर्य की प्राप्ति होती हैं। वस्तु के रूप आकार का प्रभाव जितना अधिक होगा वह उतनी ही अधिक आकर्षक रमणीय होगी। कला में सौंदर्य सम्बन्धि विचारों को अनेक विद्वानों द्वारा परिभाषित किया गया हैं।

पाषचात्य कला में सौंदर्यषास्त्र – यूनानी भाषा में सौंदर्य के लिए ''एस्थेटिक'' शब्द का प्रयोग किया जाता है जिसका अर्थ ऐन्द्रीय सुख से है इसे प्रकृति जनित भी माना गया हैं। 1750 ई. में सर्वप्रथम दार्शनिक एलेक्जेण्डर बाउमगार्टेन ने अपनी पुस्तक '' ऐस्थेटिका'' के प्रथम अनुच्छेद में '' ऐन्द्रीय संवेदनाओं का विज्ञान कहकर इसको परिभाषित किया।
जिसे ललित कलाओं के दर्शन अथवा काव्य या प्रकृति के सौंदय के रूप में माना गया। पूर्वी देशों में सौंदर्यशास्त्र को जापान में ''यूगेन'' अर्थात् कलाकृति के माध्यम से व्यक्त आन्तरिक सौंदर्य माना गया जबकि चीन में ध्वनि को सौंदर्य चिन्तन का आधार माना। इस प्रकार अलग–अलग स्थानों पर सौंदर्य की परिभाषा भिन्न–भिन्न रही परन्तु उसकी मूल उद्देश्य समान ही माना जा सकता हैं।

सौंदर्यशास्त्र की इस अवधारणा को पाश्चात्य परम्परा में सौंदर्य का दर्शन माना जाता रहा हैं। भारतीय मतानुसार सौंदर्यशास्त्र, सौंदर्य बोध मूल्यों का दर्शन विज्ञान हैं। समस्त कलाओं में इस सिद्धांत का निरूपण होता हैं। अतः सौंदर्यशास्त्र समस्त कलाओं तथा उनके व्यवहार एवं अनुभूति का सैद्धांतिक अध्ययन प्रस्तुत करता हैं। यह कला, प्रकृति तथा मानवीय जीवन का विश्लेषण, तुलना, आकलन आदि का विन्रम प्रयास हैं। यह संगीत, नृत्य, काव्य, चित्र, वस्तु, मूर्ति, नाटक आदि सभी के साथ सिद्धांत, दार्शनिक एवं व्यवहारिक रूप से जुड़ा है और उनकी व्याख्या करता हैं।

उपर्युक्त अध्ययन से यह कहा जा सकता है कि लोककलाओं में सौंदर्यकला की धारणा को इसके रूपों को, सिद्धांतो एवं अनुभूति को विश्लेषित करके प्रस्तुत करता हैं। यह मानव कल्याण के लिए कार्य करता है और ललित कला के स्वरूप को सार्थक करने में अपना पूर्ण योगदान प्रस्तुत करता हैं। इस कार्य हैंतु कला तत्वों का सहयोग एवं उनका उपयोग ही इसकी सामाजिक उपादेयता को सिद्ध करता हैं।

संदर्भ :–

- भारतीय सौंदर्यशास्त्र का तात्विक विवेचन एवं ललित कलाएं – रामलखन शुक्ल
- कला सौंदर्य और समीक्षाशास्त्र – अशोक
- सौंदर्यशास्त्र – डॉ. ममता चतुर्वेदी
- भारतीय शिल्प के षडंग – अवनीन्द्र नाथ ठाकुर अनुवादक महादेव
- कला और संस्कृति – डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल, प्रथम संस्करण
- रस मीमांसा– रामचन्द्र शुक्ल
- सौंदर्य तत्व और काव्य सिद्धान्त – डॉ. सुरेन्द्र बारलिंगे